



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(1): 231-233

© 2020 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 20-11-2019

Accepted: 22-12-2019

डॉ० रामानन्द कुमार रमण

संस्कृत विभाग, भूपेन्द्र नारायण
मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार,
भारत

गीतोपदिष्ट कर्म

डॉ० रामानन्द कुमार रमण

सारांश

भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन की सार्थकता जीवन को सुसंयत करके उसे भगवद्मुखी बनाने में है। जिससे इस क्षुद्र अल्पकालस्थायी ससीम भौतिक जीवन से उठकर महान्, शाश्वत एवं असीम, अनन्त जीवन को प्राप्त किया जा सके। श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् भगवान् श्री कृष्ण के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी है। इसकी महिमा अपार है, अपरिमित है। शेष, महेश और गणेश भी इसकी महिमा को पूरी तरह से नहीं कह सकते, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

प्रस्तावना

गीता एक रहस्यमयी ग्रंथ है। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रह किया गया है। यह हिन्दू धर्म का प्रधान स्तम्भ है, जो महाभारत रूपी महा सागर से निकला हुआ अमृत है। हमारी संस्कृति के सभी मौलिक सिद्धान्त स्पष्ट रूप से गीता में मिलते हैं। इसका दर्शन-तत्त्व उपनिषदों से प्रभावित है। इसमें जन्म और मृत्यु, आत्मा और परमात्मा तथा कर्म और योग का सुन्दर समन्वय प्रतिपादित हुआ है। कर्म, भक्ति और ज्ञान-इन तीन प्रधान सिद्धान्तों की जैसी उदार, निर्मल, सख्य और सार्थक व्याख्या इस ग्रंथ में मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। गीता का निष्काम कर्म, गीता का ज्ञान, गीता का ध्यान, और गीता की भक्ति-सभी सर्वथा पापशून्य, दोषरहित एवं मोक्ष-प्रद है। तभी तो पूर्व राष्ट्रपति एवं दार्शनिक चिन्तक डॉ० सर्वपल्ली, राधाकृष्णन जी ने कहे हैं, "गीता जीवन के सर्वोच्च लक्ष्यों को हृदयंगम करने में महत्त्वपूर्ण सहायता देती है।"

गीता सर्वशास्त्रमयी है। गीता में सारे शास्त्रों का सार भरा हुआ है। इसे सारे शास्त्रों का खजाना कहे तो भी अत्युचित नहीं होगी। महर्षि वेदव्यास जी ने कहा है-

"गीता सुगीता कर्तव्या किम अन्यैः, शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख्यपद्माद्विनिः सूताः ॥^[1]"

यह संसार कर्म भूमि है। मनुष्य का तो लक्ष्य ही कर्म है। गीता स्पष्ट रूप से कहती है कि एक भी मनुष्य क्षणभर के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता।

"न हि कश्चिद्व्ययमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥^[2]"

अतः व्यक्ति को सतत् कर्मशील रहना चाहिए। सदाचार, बुद्धि और सत्य के मार्गों को अपना कर कर्म करना चाहिए। मनुष्य को अपने कल्याण तथा लौकिक और पारलौकिक आनन्द के निमित्त सर्वदा निष्काम भाव तथा सद्बुद्धि और कर्तव्यनिष्ठा से प्रेरित होकर कर्म करना चाहिए। कर्मयोग की श्रेष्ठता बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है कि संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी हैं, परन्तु इनमें भी कर्मयोग की श्रेष्ठता महनीय है।

"संन्यासः कर्मयोगश्च निः श्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥^[3]"

भगवद्गीता का मर्म भगवद्गीता में ही व्यक्त है। इनके वक्ता साक्षात् महान् योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण है। आध्यात्मिक आकाश की तेजोमय किरणों (ब्रह्मज्योति) में असंख्य लोक तैर रहे हैं।

Corresponding Author:

डॉ० रामानन्द कुमार रमण

संस्कृत विभाग, भूपेन्द्र नारायण
मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार,
भारत

यह ब्रह्मज्योति परम धाम कृष्णलोक से उद्भूत होती है और आनन्दमय तथा चिन्मय लोक, जो भौतिक नहीं है, इसी ज्योति में तैरते रहते हैं। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं।

“न तद्भासते सूर्यो न शशाङ्कः न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥^[4]”

श्रीमद्भगवद् गीता के अध्येता आध्यात्मिक आकाश तक पहुँच जाता है, उसे इस भौतिक आकाश में लौटने की आवश्यकता नहीं रह जाती। भौतिक आकाश में यदि हम सर्वोच्च लोक (ब्रह्मलोक) को भी प्राप्त कर लें, चन्द्रलोक का तो कहना ही क्या, तो वहाँ भी वही जीवन की परिस्थितियाँ जन्म, मृत्यु, व्याधि तथा जरा होंगी। भौतिक ब्रह्माण्ड का कोई भी लोक संसार के इन चार नियमों से मुक्त नहीं है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग से श्रेष्ठ है। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। लोक-कल्याण के लिए कर्म करनेवाला ही कर्मयोगी है। सकाम कर्म अत्यन्त ही निष्कृष्ट है। कल्याण करने की शक्ति कर्मयोग में है। कर्मयोग मुक्ति का स्वतंत्र साधन है। अहंकार एवं अभिलाषा का त्याग करके सदबुद्धि और स्वविवेक को अपनाकर जो कर्म किया जाता है, उसी से शांति मिलती है। शांति स्थिरता वा निःश्चलता को कहते हैं। शांति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं।

“विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥^[5]”

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, हे अर्जुन! तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, फल में कदापि नहीं—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सद्गोऽस्त्वकर्मणि ॥^[6]”

सभी प्रकार की आसक्ति, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर भगवान् के साथ योगयुक्त होकर कर्म करना ही गीतोक्त कर्मयोग है।

“सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥^[7]”

परमात्मा में चित्त लगाकर कर्म करना चाहिए। भक्त का चित्त भगवान् को छोड़कर कहीं नहीं रमता। उसके लिए पारब्रह्म परमेश्वर ही सर्वस्व है। भक्तगण शुद्ध अन्तःकरण से भगवत्भाव से युक्त होकर शास्त्रविहित विषयों को भोगता है, जिसका ध्येय भगवान् है, भोग नहीं। गीतोपनिषद् में कर्मयोग का स्वरूप है।

“योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनत्रयजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भुत्वा समत्वं योग उच्यते ॥^[8]”

हे धनंजय! आसक्ति का त्याग करके सिद्धि असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है। अपने नियत कर्मों को दोषपूर्ण ढंग से सम्पन्न करना भी अन्य के कर्मों को भलिभाँति करने से श्रेयस्कर है। स्वीय कर्मों को करते हुए मरना पराये कर्मों में प्रवृत्त होने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है, क्योंकि अन्य किसी के मार्ग का अनुसरण भयावह होता है।

“श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मं निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥^[9]”

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अन्यों के लिए नियत कर्मों की अपेक्षा अपने नियत कर्मों को कृष्णभावनामृत में करें। भौतिक दृष्टि से नियत कर्म मनुष्य की मनोवैज्ञानिक दशा के अनुसार भौतिक प्रकृति के गुणों के अधीन आदिष्ट कर्म है। आध्यात्मिक कर्म गुरु द्वारा कृष्ण की दिव्यसेवा के लिए आदेशित होते हैं। किन्तु चाहे भौतिक कर्म हों या आध्यात्मिक कर्म, मनुष्य को मृत्युपर्यन्त अपने नियतकर्मों में दृढ़ रहना चाहिए। अन्य के निर्धारित कर्मों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। आध्यात्मिक तथा भौतिक स्तरों पर ये कर्म भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु कर्ता के लिए किसी प्रामाणिक निर्देशन के पालन का सिद्धान्त उत्तम होगा। जब मनुष्य प्रकृति के गुणों के वशीभूत हो तो उसे उस विशेष अवस्था के लिए नियमों का पालन करना चाहिए, उसे अन्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ, सतोगुणी ब्राह्मण कभी हिंसक नहीं होता, किन्तु रजोगुणों क्षत्रिय को हिंसक होने की अनुमति है।

इस तरह क्षत्रिय के लिए हिंसा के नियमों का पालन करते हुए विनष्ट होना जितना श्रेयस्कर है इतना अहिंसा के नियमों का पालन करने वाले ब्राह्मण का अनुकरण नहीं। हर व्यक्ति को एकाएक नहीं, अपितु क्रमशः अपने हृदय को स्वच्छ बनाना चाहिए। किन्तु जब मनुष्य प्रकृति के गुणों को लॉधकर कृष्णभावनामृत में पूर्णतया लीन हो जाता है, तो वह प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में सब कुछ कर सकता है। कृष्णभावनामृत की पूर्ण स्थिति में एक क्षत्रिय ब्राह्मण की तरह और एक ब्राह्मण क्षत्रिय की तरह कर्म कर सकता है। दिव्य अवस्था में भौतिक जगत् का भेदभाव नहीं रह जाता। उदाहरणार्थ, विश्वामित्र मूलतः क्षत्रिय थे, किन्तु बाद में वे ब्राह्मण हो गये। इसी प्रकार परशुराम पहले ब्राह्मण थे, किन्तु बाद में वे क्षत्रिय बन गये। ब्रह्म में स्थित होने के कारण ही वे ऐसा कर सके, किन्तु जब तक कोई भौतिक स्तर पर रहता है, उसे प्रकृति के गुणों के अनुसार अपने कर्म करने चाहिए।

“वासुदेवः सर्वम्” यह गीता का सर्वोच्च सिद्धान्त है। सब कुछ परमात्मा ही है। ऐसा अनुभव करना ही असली शरणागति है। प्रभु के प्रति सच्ची निष्ठा है, भक्ति है। सृष्टि के पहले भी परमात्मा थे, अब भी परमात्मा हैं तथा अन्त में भी परमात्मा ही रहेंगे। उनकी पूर्णता नित्य और अनन्त है। “ईशावास्योपनिषद्” में भी इसी सत्य को दर्शाया है :-

“ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्रच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥^[10]”

अतः निरंतर भगवान् का चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से कर्तव्य-कर्मों को करना चाहिए। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि “हे अर्जुन! इसलिए तू सर्वदा मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध (स्वधर्म-पालन) कर। इस प्रकार मुझ में मन-बुद्धि अर्पित करनेवाला तू निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा।”

“तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मा मेवैष्यस्य संशयः ॥^[11]”

अतः मनुष्य को नित्य-निरंतर ईश्वर का स्मरण करना चाहिए। इस कर्मयोग से ही ईश्वर की पूजा होती है और उसका फल होता है जीवन की सफलता अर्थात् जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि “गीता” का सारा चिन्तन ही व्यक्ति को कर्मयोगी बनाने के लिए है। परन्तु वह हमें निष्काम एवं त्यागमय कर्म करने की शिक्षा देती है, जिसका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। यह कर्मयोग शुद्ध भगवद् अभिमुखी है।

आज के भौतिक वादी युग में मनुष्य अपने जीवन को सुखी-सम्पन्न बनाने के लिए कर्म की महत्ता को स्वीकार करता है। निःसन्देह कर्म मनुष्य की उन्नति का मूल है।

परन्तु स्वार्थ के वशीभूत होकर केवल भौतिक एवं लौकिक सुख की प्राप्ति के नियमित कर्म की पूजा में लगे रहें तो इसे "कर्मयोग" नहीं कह सकते। यह आधुनिक काल का कर्मवाद हो सकता है, गीतोपनिषद् का "कर्मयोग" कभी नहीं। आज चारों ओर भ्रष्टाचार लूट-पाट, खुन-खराबा, ईर्ष्या-द्वेष और अशान्ति है। आदमी अपनी विलासिता की वस्तुओं को भी आवश्यकता का नाम दे रखा है तथा इनकी प्राप्ति हेतु वह निरंतर अविहित कर्मों में लगा रहता है, क्षणमात्र का भी उनके पास अवकाश नहीं है। ईश्वर और धर्म के बारे में सोचने के लिए भी समय नहीं है। वह ईश्वर, जगत् प्रकृति आदि विषयों पर वाद-विवाद करना आवश्यक नहीं समझता है। इन विषयों पर चिन्तन मनन समय की बर्बादी समझते हैं। कर्मानुसार फल की प्राप्ति न होने पर व्यक्ति राग, द्वेष, घृणा, काम, क्रोध, लोभ, मोह और पाप के शिकार हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में साक्षात् नरों में श्रेष्ठ नारायण कहते हैं :-

“काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्भिर्नमद्भवैरिणम् ॥^[12]”

निष्कर्षतः गीता का "कर्मयोग" हमें ईश्वर का चिन्तन करते हुए उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य कर्म करने की शिक्षा देता है। वास्तव में गीता वह दिव्य प्रकाशस्तम्भ है, जो विविध उलझनों में फँसे लोगों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है। यह सबको प्रकाश देती है, सबका हित करती है, मोक्ष प्रदायिनी है।

गीता गायत्री से भी बढ़कर है। गायत्री जप से मनुष्य की मुक्ति होती है, यह बात ठीक है, किन्तु गायत्री-जप करनेवाला भी स्वयं मुक्त होता है, पर गीता का अभ्यास करनेवाला तो तरन-तारण बन जाता है। जब मुक्तिदाता, स्वयं भगवान् ही उसके हो जाते हैं, तब मुक्ति की तो बात ही क्या है ? मुक्ति उसकी चरण धूलि में निवास करती है। मुक्ति का तो वह दरवाजा ही खोल देता है। गीता को हम स्वयं भगवान् से भी बढ़कर कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

“गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता में चोत्तमं गृहम्।
गीता ज्ञानमुपाश्रित्य त्रील्लोकान् पालयाम्यहम् ॥^[13]”

आज के युग में लोग एक शास्त्र, एक ईश्वर एक धर्म तथा एक वृत्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। अतएव

“एकं शास्त्रं देवकीपुत्रम् गीतम्।
एकोदेवो देवकी पुत्र एव ॥

एकोमन्त्रस्य नामानि यानि

कर्माप्येकम् तस्य देवस्य सेवा ॥^[14]”

इति श्री

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. महाभा० भीष्म० 43/1
2. श्रीमद्भगवद् गीता 3/5
3. " " 5/2
4. " " 15/6
5. " " 2/71
6. " " 2/47
7. " " 2/38
8. " " 2/48
9. " " 3/35
10. ईशावास्योपनिषद्-शान्ति पाठ
11. श्रीमद्भगवद्गीता -8/7